तीली

पूनम सिंह

परबतिया के लौट आने की खबर पूरे कुम्हरटोली में जंगल की आग की तरह फैल गई और देखते–दखते ननकू के घर के सामने लोगों की अच्छी खासी भीड़ जमा होने लगी। बस्ती की औरतें, नंग धड़ंग बच्चे तथा इक्के –दुक्के मर्द जो काम पर न जाकर घर पर ही कच्ची मिट्टी के बर्त्तनों को पकाने के काम में लगे थे – सभी ननकू के घर के चारो ओर जुटने लगे ।

परबतिया के आँगन में कोई नहीं था – न उसका भाई ननकू, न उसकी भौजी सुखिया और भतीजा मंगलू ही। घर में बाँस की फरकी लगाकर ताला भरा था – आँगन से ओसारे तक पतझड़ के बयार से टूटकर गिरे सूखे पत्ते बिखरे पड़े थे – दोपहर के सन्नाटे में पूरा घर उजाड़ और वीरान नजर आ रहा था।

परबतिया ने रेत भरी आंखों से इस मंजर को देखा – उसके भीतर कोई अदृश्य सागर चीत्कार कर रहा था, पर लहरें निःशब्द थी। आज दूसरी बार वह मायके की चौखट पर इस रूप में लौटी है। पहली बार ससुराल से–दूसरी बार बाजार से । पहली बार उसकी देह में कफन लिपटा था और आज वह पूरी तरह निर्वस्त्र होकर आई है।

शरीर का मरना और बार बार मरना – व्यवस्था के जिस महामरण का सूचक है, उसे परबतिया नहीं जानती । वह तो एक निरीह बेबस देह मात्र है – जो उपभोक्तावादी संस्कृति में कभी लेमनचूस की तरह चूसी गई तो कभी रसाल की तरह। बाली उमर में परबतिया लेमनचूस थी – दाँतो के नीचे एकबार में ही कुरमुरा उठी थी और जवानी के दिनों में तंत्र ने उसे रसाल बना दिया था – जी भरकर चूसा और गुठली के रूप में फेंक दिया कचरे के ढ़ेर पर ।

यह तंत्र क्या है ? आज की संस्कृति ? सत्ता की भाक्ति ? या व्यक्ति का अहम् मात्र !

परबतिया नहीं जानती यह सब।

वह जानती है तो सिर्फ सगे भाई ननकू को जिसने उसके बचपन को लेमनचूस समझकर पहली बार मर्तबान में भरकर उसका सौदा किया था एक व्यापारी से ––– या फिर जानती है अपनी उस डाक्टरनी दीदी को जिसने शुरू होने से पहले ही जलकर राख हुए उसके जीवन के घूरे से एक दबी–बुझी सी चिंगारी को अपनी फूँक से प्रज्ज्वलित करके कहा था –––''लौ बनकर जीना सीख पारो – अंधेरे में प्रकाश फैलेगा और छूने वाले का हाथ खुद–ब–खुद जलेगा।''

पर छूने वाले का हाथ तो कहीं से नहीं जला – बस पारो जलकर फिर राख हो गई।

निःशब्द सागर फिर हाहाकार कर उठा – पारो के भीतर –––

''इस ढ़ेर के नीचे आज चिंगारी का कोई अवशेष नहीं है दीदी, जिसे अपनी फूँक से प्रज्जवलित कर सको तुम। और कैलाशी मौसी, तुम अब किस लौ को आँचल की ओट देकर बुझने से बचाओगी ? इस दिये में तो अब एक बूँद भी तेल शेष नहीं है मौसी ! देखो, तुम्हारी पारो आज खुद अपनी लाश उठाये अंतिम संस्कार के लिए तुम तक आ गई है – आओ मौसी ! मेरा अंतिम संस्कार करो। मुझे मुक्त करो इस देहयातना से।''

''जीवन के सारे अच्छे संस्कार तुमने ही डाले थे मुझमें – मेरा अंतिम संस्कार भी तुम्हें ही करना होगा।''

''मुझे पता है स्त्री मुखाग्नि नहीं देती – इसकी जरूरत भी नहीं है मुझे। वैसे भी भाई और पति ने मुखाग्नि दे–देकर न जाने कितनी बार मृत्युलोक में घकेला है मुझे। देखो इधर – सिर्फ राख ही अवशेष बचा है मेरा। क्षार का संस्कार भी कहीं अग्नि से होता हे ? बस, अपनी आँखों के पावन जल से अर्पण–तर्पण कर देना मेरा – मैं क्षार हूँ न – क्षण में भगीरथ की दिव्यधारा में विलीन हो जाऊँगी–मोक्ष मिल जायेगा मूझे ओ मेरी पुनीत गंगे !''

''और मेरी अंतिम विनती भी सुन लो मौसी – दीदी से कहना मेरी लाश का पोस्टमार्टम न करें – बड़ी बदबू फैलेगी चारो ओर – वे नहीं सह पायेंगी इसे – हरगिज नहीं सह पायेंगी।''

परबतिया की आँखों के आगे अंधेरा छा गया – चक्कर खाकर वह भाई के आंगन में गड़ी चाक के उपर धड़ाम से गिर पड़ी ।

लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके इर्द–गिर्द जमा हो गई थी। फुसफुसाहटों का बाजार गर्म था। भीड़ की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी – ''कहाँ गुम हो गई थी परबतिया ? कौन थे वे लोग जो उठा ले गये थे इसे और वर्षों बाद फेंक गये हैं इस रूप में।'' लोगों की निगाहें खंजर की तरह उसके शरीर के हर भाग को उकेर कर क्षत–विक्षत कर रही थी और संस्कृति का नंगापन अचेत पारो की जाँघ तक उठी साड़ी और अधनंगी गोलाइयों से होकर समुदाय की आँखों में समाता जा रहा था – एक अतृप्त भूख और प्यास बनकर।

□ □ □

रात भर पारो के सिरहाने बैठकर बर्फ की पट्टियाँ बदलती और छलछला आती अपनी आँखों को पोंछती कैलाशी मौसी पारो के अतीत की भयानक परछाईयों से जूझती रही।

पारो की जिंदगी में अतीत की कुछ ऐसी घिनौनी कुरूप परछाईयाँ थीं, जिससे न तो कभी पारो मुक्त हो पाई न ही कैलाशाी मौसी। ये मनहूस परछाइयाँ अक्सर पारो को दबोच लेती थीं और वह डरकर मौसी की छाती में दुबक जाती थी – ''ये परछाइयाँ भूत बनकर मेरे पीछे पड़ी हैं मौसी, मुझे इनसे बचा लो।''

कैलाशी महसूस करती थी पारो की इस बेचैनी को – उसके दर्द को। कितना समझाती थी उसे तब – ''पगली, अतीत हमेशा ही दुखदायी होता है – उसे भूलना चाहिए – जीवन बहती हुई एक धारा है पारो – इस
धारा में अतीत के कितने ही शिलाखण्ड बहते रहते हैं – उसे देखती रहेगी तो कभी धारा के साथ नहीं चल पायेगी तू। देख मुझे – अगर वैधव्य को शाप मानकर प्रस्तर प्रतिमा बन जाती तो क्या जीवन को इतने प्यार से गले लगा पाती। इस 'सेवाधाम' में आने के बाद ही मैंने जाना कि जीवन गटर या गंगा कैसे बनता है ?''

भोली पारो टुकुर–टुकुर मौसी का मुँह ताकती रहती – और कैलाशी गुरु की तरह उसे जीवन का मर्म बताती – ''पारो तूने देखा है न अपनी बस्ती का वह 'गटर' जिसमें पूरी बस्ती का गंदा पानी जमा होता है, पर निकल नहीं पाता – वहाँ कितनी बदबू फैली रहती है। बिना नाक पर कपड़ा दिये कोई गुजर नहीं सकता उधर से, पर इसी गाँव में कोसी की धार भी तो है – शाम को उसके किनारे घूमने में कितना आनंद आता है बोल। इसी से कहती हूँ – पारो – धार बन – सतत् गतिशील रह – औरों के दुःखों को बाँटना सीख – अपना दुःख, अपनी बेचैनी आप से आप भूल जायेगी।''

पर क्या भूल पाई पारो अपने दुःख, अपनी बेचैनी को कभी ? डॉ० दीदी के इस 'सेवाधाम' में रहते हुए यद्यपि पारो ने भरसक प्रयास किया था कि अतीत की उन बेदर्द परछाईयों को काट कर वह एक नई जिन्दगी शुरू करे , पर परछाइयाँ फसल तो है नहीं कि हँसुए लगाकर काट दी जायें और कूट–पीस कर खा ली जायें। पारो चाह कर भी नहीं काट सकी इन परछाइयों को।

उसे यह दर्द हमेशा सालता रहा कि बगल की मठियारी गाँव में दस वर्ष की परबतिया अपने सगे भाई द्वारा पाँच कट्ठे जमीन के लोभ में चालीस वर्ष के एक अधेड़ के साथ व्याह दी गई थी और यह ब्याह एक चुटकी सिन्दुर के नाम पर देह व्यापार का एक लाइसेंसी सौदा था।

कैलाशी मौसी की आँखें फिर पनीली हो जाती हैं इस दंश से। सब कुछ घूम रहा है उसकी आँखों के आगे – वह आनन–फानन में हुआ ब्याह – वह नादान पारो की नादान खुशी। तब उम्र ही क्या थी उसकी – बालू के घरौंदों से खेलने वाली अल्हड़ नादान बालिका थी पारो। बाजे गाजे और पालकी कहार को देखकर बहुत खुश हुई थी और भौजी जब उसके नाजुक पैरों में एक तोला चाँदी की पाजेब बाँधकर कहा था कि तेरा दुल्हा लाया है। तब वह खुशी में बौराती उसे बाँधकर छमछम दौड़ती पूरी बस्ती में घूम आई थी। गाँव की काकी–चाची , आई–भाई ने डाँट पिलाई थी – ''अरी छोरी रात तेरा व्याह हुआ है और अभी घोड़दौड़ मचाये फिर रही है धम–धम । साँझ पहर जायेगी ससुराल तो कैसे बैठेगी देह मोड़ कर कोहवर में ।''

भोली पारो ने अचकचा कर कहा था –''धत् ! मेरा व्याह कब हुआ – झूठी कहीं की ।'' और उसी रौ में सरपट भागती चली गई थी भौजी से पूछने ।

कैलाशी को कितना अखरा था यह व्याह तब , पर दूसरे के घर की बात में वह भला किस हैसियत से दखल देती – तब मिजाज भी नहीं था आज वाला और डॉक्टरनी दीदी भी नहीं जानती थी किसी पारो परबतिया को तब । नहीं तो क्या होने देती यह जुल्म ?

नींद में उंघाई–सी बच्ची को जाँध पर बिठा कर भाई ने कन्यादान करके पुण्य कमा लिया था और भौजी हर जगह ढ़िढ़ोरा पीटते हुए कहती फिरती थी – ''देखो परबतिया का भाग। गरीब की बेटी राजा के घर व्याही गई । दो–दो बखारी (अनाज रखने वाला बाँस का मेड़ा) है दरवाजे पर । धान–गेहूँ का बोझा ढहराया रहता है दुआर से आँगन तक। दूध दही के नाले बहते हैं उस घर में। अरे, बहना ! क्या–क्या बताऊँ – मेरा तो मायका ही है उस गाँव में – सब कुछ देखा सुना है पहले से। देशी शराब के दो–दो लाइसेंसी भट्ठे अपने पिछवाड़े बैठाये हुए है मेरा ननदोई । हजारों रुपये की तो रोज दारू बिकती है उसकी। अरे, जिसके कलेजे पर साँप लोटता है वही कहती फिरती है चारो ओर कि उमरगर है दूल्हा। पर मैं पूछती हूँ – क्या मर्द की भी कोई उम्र देखता है ? शरीर से हट्टा–कट्टा कमाऊ होना चाहिए और क्या ? बेचारा भाग्य का मारा है जो सबकुछ के रहते वंश की खतिर मेरे दुआरी तक दौड़ा आया। पहले भी ब्याह हुआ था – घर वाली दो बार पेट से भी रही, पर न जाने किस जादू टोने की वजह से दोनों बार खूने–खून होकर बच गई वह। पर तीसरी बार लग ही गया बाण ठिकाने पर। न रोग न व्याधि – अचानक पेट में शूल की तरह किसी ने बर्छी मारी और भभक पड़ा पनाला लहू का – देखते–देखते सब साफ । वंश की खतिर दूसरा व्याह भी किया पर औरत नहीं रहती है उसके पास। सुनती हूँ कोई छूत की बिमारी थी उसे – मायके से ही लाई थी साथ – इसीलिए छोड़ आया है उसे मायके में सड़ने को। बूढ़ी मतारी जिंदा है अभी – बेटे के दुःख में पागल सी – उसी ने ओझा– गुणी , पंडित–पादरी सबके द्वार छाने तब कहीं जाकर बनारस के एक पहुँचे फकीर ने बताया कि पाक साफ कन्या से ब्याह करो – तभी तेरे घर चिराग जलेगा – बस यही तो किस्सा है – परबतिया के राजरानी बनने का। देखना – साल –दो साल में ससुराल का खा–पीकर कैसी सेठानी होकर आयेगी मेरी परबतिया – दुल्हे की उमर पीछे छूट जायेगी हाँ।''

और भौजी उमंग से उगबुगाती–इतराती इस आँगन से उस आँगन तक यह किस्सा दुहराती फिरती थी ।

पर पाँच साल इकट्ठे ससुराल रहकर जब पहली बार परबतिया मायके लौटी तो भौजी की भविष्यवाणी झूठी साबित हुई। हृष्ट–पुष्ट बैलों से जुते झालर लगे संपनी पर चढ़कर आई थी परबतिया । भारी भरकम साड़ी और उससे भी अधिक वजन के चाँदी के मोटे–मोटे गहनों से पिटी थी उसकी पूरी देह। खाजा, लड्डू और कसार के दस पौते आये थे उसके साथ। पर सबकुछ उतरने के बाद जब परबतिया संपनी से नीचे उतरी तो ऐसा लगा था जैसे कोई ठठरी उतरी हो जमीन पर – पेड़ बनने गई परबतिया, ठूठ बनकर लौटी थी उस घर से।

यह भेद तो बाद में खुला कि ठर्रे के नशे और पाँच कट्ठे जमीन के लोभ में ननकू ने अपनी सगी बहन को ब्याह के नाम पर बेच दिया था।

कैलाशी मौसी के मुँह से एक ठंडी आह निकल जाती है। वह सोचने लगती है – पारो का यह अतीत तो सर्वविदित है – पूरा गाँव जानता है इस किस्से को, पर पारो के अतीत की कोख में नासूर बनकर जो एक और अतीत पल रहा था उसे आज तक किसी ने नहीं जाना । कैलासी मौसी और डाक्टरनी दीदी ने मिलकर उस गलित , मवाद से भरे नासूर को परबतिया के शरीर से काट फेंका था और 'सेवाधाम' के इसी छत के नीचे परबतिया का एक नया जन्म हुआ था पारो के रूप में।

उस जन्म की कहानी, उस कहानी का एक–एक दृश्य आज भी कैलाशी मौसी को ज्यों का त्यों याद है। मरनासन्न परबतिया किस तरह खटोले पर टंगा कर आई थी इस घर में। दीदी कितने आक्रोश में थी उस दिन। परीक्षण के क्रम में ही पागलों की तरह विफर उठी थी – ''किसने की है इसकी ऐसी हालत – उस आदमखोर भेड़िये को लाओ मेरे पास – मैं खून पी जाऊँगी उसका। फूल सी बच्ची को जानवरों की तरह भम्होर खाया है कुत्तों ने – बुलाओ इसके नरभक्षी पति और जालिम भाई को – पुलिस के हवाले करूँगी उन्हें – खाल उधेड़ कर नमक छिड़कवाऊँगी उनके शरीर पर – नंगा करके धुमवाऊँगी सारे गाँव में हरामजादों को ———'' गुस्से और आवेश से थर–थर काँप रही थी डाक्टरनी दीदी ।

परबतिया ने धीरे धीरे सब कुछ बता दिया था उन्हें – घर के पिछवाड़े में दारू की भट्ठी पर केवल दारू ही नहीं बिकती थी – औरत की बोटी भी भून कर खाते थे वे लोग – पहले जब उसके शरीर में कहीं से कोई बोटी नहीं थी तो एक ग्राहक ने कहा था – यार , यह तो लेमनचूस है – खट्टी–मिठी सी – साली रसाल कब बनेगी ?

दीदी के बर्दास्त के बाहर था यह सब। ऐसी सड़ी–गली–घिनौनी व्यवस्था के प्रति वे शुरू से ही बहुत आक्रामक थीं पर पारो के मामले में कैलाशी मौसी ने उन्हें बहुत मुश्किल से संयत किया था –''दीदी , इस छोटी सी बच्ची का पूरा जीवन अभी इसके सामने पड़ा है –इस तरह सब कुछ सबके सामने खोल देने से यह एक नरक से निकल कर दूसरे नरक में धकेल दी जायेगी । समाज कभी इसे अच्छी नजर से नहीं देखेगा – इसका मासूम चेहरा बदनुमा धब्बों से भर जायेगा दीदी – इसे ऐसी बदसूरत जिन्दगी मत दीजिए दीदी – मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ।''

पता नहीं मौसी का आग्रह था या कुछ और, कैसे दीदी के भीतर का सारा आक्रोश एक मानवीय संवेदना में डूबकर, दृढ़ निश्चय में बदल गया, उन्होंने ननकू और परबतिया के पति पर एक नाबालिग लड़की को ब्याह में

बाँधने का आरोप लगाते हुए एक केस दर्ज कर दिया और कोर्ट से आग्रह किया कि जब तक परबतिया बालिग नहीं हो जाती और अपने जीवन का अहम् फैसला करने की हकदार नहीं हो जाती, तब तक वह एक मानवीय दायित्व के तहत् उसकी परवरिश का जिम्मा लेना चाहती हैं। इस तरह परबतिया का इस 'सेवाधाम' में आना और फिर कभी न लौटना एक ऐतिहासिक घटना बन गई इस गाँव के लिए।

'सेवाधाम' के हर कोने में अब पारो ही पारो दिखाई देती थी। कभी दीदी के बेडरूम को अपने हाथों से सजाती –सँवारती पारो, कभी ऑपरेशन थियेटर के औजारों को स्ट्रलाइज करती पारो। कभी खिड़की दरवाजे के परदे उतारती –टाँगती पारो , कभी मरीजों के लिए सूप, दलिया या खिचड़ी बनाती पारो, कभी नई दवाइयों के कार्टून्स खोलकर उन्हें अल्मीरे में सजाती पारो, कभी मौसी के सिर और पैर में तेल मलती पारो तो कभी दीदी के सामने बैठकर हिन्दी –अंग्रेजी के शब्दों को टो–टो कर लिखती पढ़ती पारो। इस घर के एक–एक कोने की जरूरत बन गई थी पारो।

कितनी लगन थी कुछ करने और सीखने की इस लड़की में। दिन भर मौसी के पीछे–पीछे साये की तरह लगी रहती थी वह।

''मौसी, मुझे भी सिखा दो ना पट्टी करना।''

''मौसी, मुझे भी बता दो ना सूई देना।''

''मौसी, तुम दीदी से कह कर मुझे भी क्यों नही रखती ऑपरेशन थियेटर में अपने साथ ? मैं भी तुम्हारी तरह ट्रेंड नर्स बनना चाहती हूँ। ''

खिलखिलाकर हँस पड़ती है कैलाशी मौसी।

धत् ! पगली – अभी तो तू छोटी सी बच्ची है–जब सयानी हो जायेगी तब आप से आप सीख जायेगी सब।

दौड़ती–भागती गाड़ी कर्र से ब्रेक लगने पर जैसे रूक जाती है वैसे ही हँसती खिलखिलाती मनुहार करती पारो की सारी चंचलता ऐसी बातों से खत्म हो जाती थी। उस दिन भी ऐसा ही हुआ था। अचानक बहुत गम्भीर ,बहुत खामोश हो गई थी वह।

''क्या हुआ पारो, ऐसे चुप क्यों हो गई ?''

''नहीं मौसी चुप कहाँ हूँ–बस सोच रही थी अब क्या मैं फिर से सयानी होऊँगी ? मैं तो बचपन में ही सयानी थी मौसी तभी तो ———'' और वह फूट–फूट कर रो पड़ी थी।

ऐसा एक बार नहीं, कई बार होता था जब अच्छी भली हँसती–खेलती पारो अचानक गुमसुम, उदास और अकेली हो जाती थी। अतीत का कोई कुरूप, वीभत्स, मनहूस साया उसे दबोच लेता था अंधेरे में।

एक दिन दीदी ने अंधेरे से भयभीत पारो को झकझोर कर कहा था –''अंधेरे से लड़ना है तो लौ बन पारो – इस तरह अंघेरे का हिस्सा होकर मत रह मेरे सामने।''

और पारो सचमुच लौ बन गई थी – अंधेरे में सर्वत्र दुधिया प्रकाश फैलाती – बीमार, गरीब, असहाय लोगों के भीतर की सारी पीड़ा, सारे दर्द को हरती। जीवन के ऊबड़–खाबड़ पथरीले रास्ते को पार

कर पारो अब एक समतल भूमि पर खड़ी थी जहाँ से जीवन का विस्तार आकाश की ऊँचाईयों को मापता क्षितिज के ढ़लान तक एक सा दिखई देता है। पारो इस विस्तार को अपने मन प्राण और आत्मा तक में समेट चुकी थी।

मौसी ने एक दिन उससे पूछा था –''पारो एक बात पूछूँ–जीवन का एक–एक पल तू लोक सेवा में अर्पित कर रही है, पर अपनी ओर देखने का ख्याल क्या कभी तेरे भीतर नहीं आता ? कहीं जीवन का यह दान तुम्हें अवसान काल में व्यथित तो नहीं करेगा ?''

पारो ने उन्मुक्त हँसी हँसते हुए कहा था– ''मौसी, जीवन का अवसानकाल तो मेरा कब का गुजर गया। अब तो उदित काल में ही जीना है मुझे। फिर दुःख कैसा ?'' पर पारो के जीवन का वह अवसान काल बीता कहाँ था ? अदृश्य नियति काल पीठ पर बैठ कर नेपथ्य में कोई खेल रच रही थी –––

उस दिन पारो बहुत अनमनी और असंयत सी थी। मौसी ने बहुत बार पूछा पर टाल गई लेकिन आधी रात को सिसकियों की आवाज सुनकर जब मौसी की नींद खुली तो उसने पारो को जाल में फँसी मछली की तरह बिछावन पर छटपटाते देखा था। स्नेहिल स्पर्श को महसूस कर वह चिपट गई थी उसकी छाती से –''क्या मेरा विगत मुझे कभी चैन से जीने नहीं देगा मौसी ? जब भी थोड़ा संयत होती हूँ – एक पृष्ठ फिर कोई खोल देता है आँखों के सामने। कल 'सेवाधाम' के प्रांगण में मैंने उस व्यक्ति को देखा है, जिसने कभी रसाल की तरह चूसने की कामना की थी मुझे। मैं कल से उस दारुण ज्वाला में जल रही हूँ। राय साहब के बेटे के साथ आया था वह। वे दोनों जीप के ड्राइवर को लाद कर लाये थे दीदी के पास, जिसने शायद जहरीली शराब बहुत ज्यादा पी ली थी। मुझे देखकर उसके चेहरे और आँखों में जो भाव आया था – उसे मैं एक क्षण भी भूल नहीं पा रही मौसी ! किसी मनुष्य की आँखों में वैसी खूँखार भूख और खूनी प्यास नहीं जग सकती। वे आँखें हर कोने से मुझे घूर रही हैं मौसी – मैं कहाँ जाऊँ – कैसे चैन पाऊँ – बताओ ?'' मौसी ने उसे ढ़ाढ़स देते हुए कहा था – ''तुम्हें भ्रम हुआ है पारो, वैसा कोई व्यक्ति इधर आने का साहस नहीं करेगा – तू अपने को स्थिर कर। ''

काश ! उस दिन देख पाती मौसी पारो के अचेतन में बैठे उस भय को – समझ पाती भावी आशंका के उस संकेत को – काश ! काश ! –––

□ □ □ □

डॉ0 शिप्रा आज अपने को बहुत बेबस और अव्यवस्थित महसूस कर रही हैं। पारो का इस रूप में लौटना उसकी चेतना को तेज अंधड़ की तरह झकझोर रहा है। क्या समाज और राष्ट्र के ठेकेदारों ने गुठली के रूप में पारो को उसके दरवाजे पर फेंक कर यह जतलाने की कोशिश की है कि ''देख, पानी में रह कर मगर से बैर लेने का अंजाम क्या होता है ?'' क्या पारो एक चुनौती बनकर लौटी है उसके पास या शिप्रा हार गई है इस तंत्र – इस व्यवस्था के सामने !

तीन वर्ष पूर्व इसी घर – इसी गाँव से दिन–दहाड़े लापता कर दी गई थी पारो और एक सुराग तक नहीं मिला था उसे इस अपहरण का जबकि पुलिस दरोगा और प्रशासन की चक्कर लगाते शिप्रा के तलुए घिस गये थे । उसे याद है पारो के अपहरण की रपट लिखाने जब वह थाना पहुँची थी तो दरोगा ने परिहास के स्वर में उससे कहा था – ''डाक्टर साहिबा, आप खामखा परेशान हो रही हैं – यह कोई अपहरण का मामला थोड़इ है – अरे, भाग गई होगी अपने यार के साथ। आप कह रही हैं न कि उस दिन कालाजार के कांफ्रेंस में भाग लेने आप शहर गई थीं तो साहिब, मौका उसे अच्छा मिला –घर सूना था – आराम से निकल गई बेचारी। आप क्यों इतना तूल दे रही हैं इसे – कौनो सगी बेटी तो थी नहीं आपकी। ''

शिप्रा का चेहरा तमतमा उठा था। दरोगा से उसकी अच्छी खासी झड़प हो गई थी और क्रोध में आकर उसने सबके सामने उसे दरबार का पालतू कुत्ता तक कह दिया था –––

''मैं जानती हूँ रणजीत सिंह – दरवार के पालमू कुत्ते अफीम के नशे में अपनी वफादारी निभाते हैं पर यह वफादारी आपको बहुत महंगी पड़ेगी। मैं ऊपर तक आपकी रिर्पोट करूँगी। सारा गाँव जानता है कि यह अपहरण केवल मुझे टॉर्चर करने के लिए, मेरा मनोबल ताड़ने के लिए किया गया है ताकि चुनाव के मैदान में जंगल का राजा अकेला विहार कर सके और जनप्रतिनिधि बनकर कोई उसके सामने खड़ा तक

होने का साहस न करे पर भ्रम में मत रहो दरोगा – प्रजातंत्र की भेड़–बकरियाँ अब डण्डे से नहीं हॅकाई जा सकती – वे भी अब चौकन्नी होकर अपने रास्ते पर चलना सीख गई है पर शर्म करो तुम खुद पर ! तुम सियासत के गुलाम तो इन भेड़ बकरियो से भी गये गुजरे हो। ''

दरोगा इस अपमान से तिलमिला उठा था। वह भी तैश में आकर गरजने लगा – ''मैडम आप मुझे धमकी दे रही हैं तो सुन लीजिए – मैं आपकी धमकियों से डरने वाला गीदड़ नहीं हूँ। आपको जो करना है कीजिए, पर मैं उस केस को अपहरण का मामला दर्ज नहीं कर सकता, क्योंकि आपका शक बेबुनियाद है। परबतिया का भाई ननकू अभी दो घंटे पहले अपनी रपट में बहन के किसी के साथ भाग जाने की बात लिखा गया है और आप हैं कि बेवजह इसे राजनीतिक रंग दे रही हैं। परोक्ष रूप से आपका निशाना किधर है – उसे खूब समझता हूँ मैं। आप ऊपर तक शौक से मेरी रिपोर्ट कीजिए – मुझे किसी की परवाह नहीं। जाइये मेरा वक्त बरबाद मत कीजिए।''

उस दिन अपमान का कड़वा घूंट पीकर थाने से लौटी थी शिप्रा। फिर भी इतनी अपसेट नहीं थी जितनी आज है। उसे विश्वास था कि जल्द ही ठोस सबूत के साथ उसका बेबुनियादी कहा जाने वाला शक प्रमाणिक सिद्ध होगा, जब पारो तलाश ली जायेगी और नकाबपोश कई चेहरों की हकीकत सामने लायेगी। पर चार महीने लगातार प्रयास करके वह थक गई – न पारो मिली, न उसके अपहरण का कोई ठोस सबूत ही मिला।

धीरे–धीरे चुनाव की सरगर्मी में यह मामला प्रशासन की धूल फाँकती फाइलों के नीचे दबा दिया गया।

उसी बीच शिप्रा की जिन्दगी में एक और भूचाल आया। मानवीय मूल्यों के विघटन से त्रस्त जनता जनार्दन ने उसे जबरन अपना प्रतिनिधि बनाकर तंत्र के सामने ला खड़ा किया और न चाहते हुए भी शिप्रा को चुनावी दंगल में उतरना पड़ा। यद्यपि व्यक्ति, समुदाय और परिवेश अंत–अंत तक उसके अनुकूल बने रहे पर जब परिणाम घोषित हुआ तो सबने देखा कि शिप्रा के रेस का घोड़ा किसी अदृश्य चाबुक की मार खाकर उल्टी दिशा की ओर मुड़ गया था और वह धूल के गुब्बारे से भरे मैदान में मुँह के बल औंधी पड़ी थी। प्रजा हैरान और परेशान थी – सील्ड पेटियों में उसके बहुमूल्य मतों का सौदा रातो–रात किसने, कब और कैसे किया ? शिप्रा चुप थी । उसने लोकतंत्र के इस निरंकुश और घृणित स्वरूप को पहली बार बहुत नजदीक से देखा और महसूस किया।

लेकिन शिप्रा भी न जाने किस धातु की बनी है – हर नया दर्द उसे कुछ और तपा जाता है – कुछ और सख्त और पुख्ता बना देता है। अभी पारो का जख्म उसके भीतर हरा ही था कि एक नया घाव फिर हो गया उसके सीने में। इस चोट से टूटने की जगह वह कुछ और जुड़ी ही अपने भीतर। उसने सोचा कि अगर लोकतंत्र का स्वरूप राजतंत्र से कहीं अधिक निरंकुश और स्वेच्छाचारी होता है तो वह इस निरंकुश तंत्र पर अंकुश लगाने के लिए संकल्पबद्ध है। उसने तय कर लिया था कि इस व्यवस्था के खिलाफ वह अपनी अंतिम सामर्थ्य तक लड़ेगी।

जमाने के लिए पारो एक आई–गई बात होकर रह गई, पर शिप्रा के भीतर एक टीस बनकर वह कसक रही थी अब भी। जबसे राघोपुर के श्रीकांत बाबू ने उसे पारो के बारे में एक संकेत दिया था, वह और भी बेचैन हो गई थी।

क्या स्त्री देह का व्यापार अब घर कोठे से होता हुआ एक्सपोर्ट–इम्पोर्ट तक की वस्तु बन गया है। औरत की बोटियों का सौदा करने वाले कौन हैं वे लोग, जिसे अपना संरक्षण देकर यह तंत्र आदमखोर भेड़ियों और गिद्धों का एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर रहा है ?

क्या पारो की नंगी देह भी किसी इंटरनेशनल मीट शॉप पर उल्टी टंगी बिक रही होगी ?

शिप्रा अपनी ही सोच पर भीतर तक कॉप गई थी। पागलों की तरह चीख पड़ी थी वह – नहीं–नहीं , मैं खून पी जाऊँगी उन कसाइयों का –––''

उसके बाद ही पारो की खोज का एक नया सिलसिला फिर शुरू किया शिप्रा ने। व्यक्तिगत रूप से शहर जाकर, वह उच्चाधिकारियों से भी मिली – जिलाधिकारी, आरक्षी अधीक्षक सबने आश्वस्त किया पर किसी ने किया कुछ भी नहीं। हाँ, कमिश्नर मि० दत्ता से मिलकर उसे थोड़ी उम्मीद अवश्य बँधी थी, क्योंकि लोगों से उसे पता चला कि यह व्यक्ति वसूलों के लिए जीने वाला एक नेक इंसान है और एक सच्चे

प्रशासक के रूप में हर जगह उसने अपनी एक इमेज बनाई है। पुलिस की निष्क्रियता से क्षुब्ध और निराश होकर शिप्रा ने निश्चय कर लिया कि वह कमिश्नर से मिलकर एक बार फिर प्रयास करेगी – अगर वह सही व्यक्ति है तो उसकी मदद अवश्य करेगा। उस दिन डिस्पेंसरी के लिए दवा लेने उसे शहर जाना था। उसने उसी क्रम में मि० दत्ता से मिलने का निश्चय किया। उसे बेहद आश्चर्य हुआ जब स्लिप भिजवाते ही मि० दत्ता ने उसे तुरंत अंदर बुलवाया था और बड़े गर्मजोशी से उसका स्वागत करते हुए कहा था –

''वेलकम डा० शिप्रा – वेरी ग्लैड टू मीट यू। बहुत दिनों से आपके बारे में लोगों से सुना था – आज आपसे रूबरू होकर बेहद खुशी हुई।''

शिप्रा आश्चर्य और असमंजस की स्थिति में पड़ी सोच रही थी – ''मेरे बारे में पहले से ––– ''

''आप हैरान क्यों हैं ? बैठिये तो सही। आपका ब्लॉक इस कमिश्नरी का ही तो अंग है ना और सबसे बड़ी बात यह है कि जिस क्षेत्र का मंत्री राष्ट्रीय स्तर का नेता हो – जो क्षेत्र राजनीति की फसलों के बीज भंडार के रूप में सारे देश में चर्चित हो और जहाँ पर्यावरण को संतुलित करने के लिए आप जैसी संकल्पनिष्ठ साधक हों – वहाँ की खबर प्रशासन को कैसे नहीं होगी ? बस इसी क्रम में मैं आपके नाम से परिचित हूँ।'' मि० दत्ता ने बहुत सहज भाव से हँसते हुए शिप्रा से कहा था। कमिश्नर की इस टिप्पणी से शिप्रा को लगा कि यह व्यक्ति बहुत दूर तक अपनी दृष्टि रखता है और इसकी सोच में 'कुछ' है जो औरों से जुदा है।''

''क्या बात है ? आप बहुत सीरियस हो गई।''

''जी नहीं, ऐसी कोई बात नही बट इफ यू हैव टाइम प्लीज लिस्न मी पेशेंटली एंड सीरियसली।''

ओफ्फ श्योर, आप रिलेकस होकर और खुलकर कहिये। और शिप्रा ने पारो से संबंधित उन सारे वारदातों और कारणों को विस्तार से बताया जिसके आधार पर वह इस केस को अपहरण मान रही थी। 'सेवाधाम' के प्रांगण में राय साहब के बेटे, उस आदमी और ड्राइवर का आना और उसके दो दिन बाद ही नाटकीय ढंग से पारो का गायब हो जाना – नेपथ्य के भीतर किस सूत्रधार की ओर संकेत करता है ?

अपनी बात कहने के क्रम में भावना और संवेदना के अतिरेक से शिप्रा की आवाज भर्रा गई थी – उसने बहुत बोझिल स्वर में कहा था – ''आज की व्यवस्था इकाई से दहाई तक (व्यक्ति से समुदाय तक) कालिख की एक
अंधी सुरंग नजर आती है कमिश्नर साहब ! यह अंधी सुरंग सारे तंत्र – सारी व्यवस्था को निगल गई है आज और आँखों के सामने दूर तक पसरा है – बस, सर्वव्यापी घना अंधकार।''

मि0 दत्ता ने दर्द से अभिभूत होकर कहा था – ''मैं आपकी भावनाओं की कद्र करता हूँ डॉ० पर मैं अंधकार को कोसने से बेहतर समझता हूँ – एक तीली जला लेना और अगर इस तीली का सही उपयोग करना है तो इसे मौसम की नमी से भी बचाये रखने की जरूरत है। ''

शिप्रा के भीतर लौ की तरह 'भक' से कुछ जल गया था और वह शालीनता से मि० दत्ता को नमस्कार करके बाहर निकल गई थी। एक नये उत्साह और विश्वास भरकर शहर से लौटी थी शिप्रा।

एक दो सप्ताह बाद ही उसे लगा था कि मि० दत्ता से व्यक्तिगत रूप से उसका मिलना बहुत सार्थक हुआ । थाना से एक पुलिस कांस्टेबल और एक हवलदार सेवाधाम में पारो के विषय में नये सिरे से पूछताछ करने आया था, क्योंकि हेडक्वार्टर से इस केस को दुबारा पूरी छानबीन के साथ देखने का आर्डर आया था। पुलिस पारो की पिछली जिन्दगी पर पड़े पर्दे को उठाकर नये सिरे से इस केस की तहकीकात करना चाहती थी।

पर व्यवस्था कभी इतनी सहज गति से तो चलती नहीं – उसके पैर बिच्छू की तरह टेढ़े–मेढ़े घुमावदार होते हैं – हमेशा डंक मारने को तैयार और फिर उसने डंक मार दी थी शिप्रा की उम्मीदों पर। कमिश्नर दत्ता का ट्रांसफर प्रांत के बाहर किसी सेंटिंग पोस्ट पर हो गया था। सुबह की चाय के साथ अखबार के पहले पृष्ठ पर इस न्यूज को पढ़कर शिप्रा को कोई आश्चर्य नहीं हुआ था, मानो कोई प्रत्याशित खबर थी उसके लिए ।

अप्रत्याशित है तो बस इस तरह पारो का इतने वर्षों बाद लौटना – एक तमाचे की तरह वह आकर पड़ी है शिप्रा के मुहँ पर – कनपट्टी का एक–एक सिरा झनझना उठा है उसका। इस मुर्दे में शिप्रा फिर

जान फूँकेगी – उसे जीवित करेगी क्या इसलिए कि व्यवस्था फिर उसें बिषाक्त दाढ़ों में चबा जाये और सिट्ठी लाकर उसके आगे छोड़ दे।

नहीं, हरगिज नहीं ! अब राख के ढ़ेर के नीचे वह किसी चिंगारी को नहीं तलाशेगी – न ही उसे फूँक मारकर लौ की तरह प्रज्ज्वलित करेगी – अपने आस–पास उसे झाड़ झााखड़ को जलाने के लिए अब ऐसे किसी लौ की नहीं, तीली की जरूरत है बस, एक बूंद बारूद और सब साफ ।

□ □ □ □